;kxokfl"B esa deZ;kx ,oa deZQy fl)kUr dh 0;kogkfjd ehekalk

डॉ0 रीमा श्रीवास्तव
सहा0 प्राध्यापिका
मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग
देव संस्कृति विष्वविद्यालय, षान्तिकुॅन्ज, हरिद्वार

शोध सार

अध्यात्म विद्या में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष, मुक्ति, ब्रह्मज्ञान आदि के सन्दर्भ में देखा गया है। योग की विभिन्न विद्याओं में इस शिखर बिन्दु की प्राप्ति के अनेक उपाय, सिद्धान्त एवं विभिन्न योग मार्गों की विवेचना है। इनमें साधना मार्ग में सर्वाधिक प्रचलित कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के सिद्धान्त हैं। योगवासिष्ठ के तात्विक स्वरूप में इन सिद्धान्तों की गूढ़ एवं विशद विवेचना प्रस्तुत हुई है।

कर्मयोग –

आसक्ति रहित होकर निष्काम भाव से प्रयास–पुरूषार्थ करना, कर्मयोग है।[1] गीता में कहा गया है "जो सारे कर्मों को तथा उसके फलों को भी ईश्वर में समर्पण करते हुए अनासक्त होकर निष्काम भाव से जो कर्तव्य कर्म करता है, वह जल में कमल के पत्ते के समान पापों से लिप्त नहीं होता है।"[2] इसका तात्पर्य यह है कि निष्काम कर्मयोग के द्वारा परमात्म तत्व को प्राप्त कर सकता है।

आचार्य श्री राम शर्मा के अनुसार "कर्मयोग का पूरा नाम निष्काम कर्मयोग है, जिसका अर्थ होता है फल की आसक्ति छोड़कर कर्म करना।"[3] सभी प्रकार की कामनाओं से रहित होकर किया गया कर्म ही कर्मयोग बनता है। योगवासिष्ठ में कहा गया है कि कर्म करने में दोष नहीं पर उसमें आसक्त होना तो हानिकारक है।[4] जैसे कि योगवासिष्ठ में कहा गया है कि कर्म दुखदायी नहीं कर्म की आसक्ति दुखदायी है। कर्मयोग का रहस्य समझ लो और आसक्ति रहित होकर कर्म करो, ईश्वर भावना शीघ्र प्राप्त होगी। साधक में वैराग्य की कमी होने पर भी केवल दूसरों के लिए कर्म करने से, आसक्ति का त्याग सुगमतापूर्वक हो जाना कर्मयोग है।[5] कर्मयोग इस जगत् का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। कर्मयोग में दूसरों के लिए समस्त कर्म किये जाते हैं, अपने लिये अर्थात् फल प्राप्ति के लिए नहीं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है **"कर्मण्ये वाधि कारस्ते मा फलेषु कदाचन।"**[6] निष्काम कर्मयोग से मनुष्य के बंधन कटते हैं और बंधनों के कटने से अन्तःकरण निर्मल एवं पवित्र होता है, क्योंकि कर्मयोगी ममत्व बुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं तथा जिसका शरीर अहं रूपी विष से दूषित नहीं हुआ वह रागादि रूपी हैजे से मुक्त योगी कर्म करते हुए भी लिप्त नहीं होता।[7] आसक्ति रहित होकर न्याय से प्राप्त कर्म करने वाला मनुष्य कर्मों में नहीं बंधता।

गीता में वर्णित हुआ है "कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके परमात्मा की प्राप्ति तथा परम शान्ति को प्राप्त होता है और सकामी पुरूष कामना वासना की प्रेरणा से फलों में आसक्त होकर संसार बंधन में बंध जाता है।"[8] अर्थात् वह संसार बंधन को ही प्राप्त होता है।

प्रस्तावना

कर्म –

योगवासिष्ठ में कर्मबंधन का कारण बताते हुए कहा गया है कि अज्ञानी को अपने सब कर्मों का फल इसलिए भुगतना पड़ता है कि उसके कर्मों का सार वासना है। वासना के क्षीण (समाप्त) हो जाने से ज्ञानी को अपनी किसी क्रिया का फल नहीं भोगना पड़ता है। वासना के अभाव से सब क्रियाएं फल रहित हो जाती हैं।[9] चाहे वे अशुभ फल देने वाली ही क्यों न हों, जैसे कि सींचे बिना लता सूख जाती है। ऋतु के पलट जाने पर पहली ऋतु की सब बातें विलीन हो जाती हैं।[10] वैसे ही वासना के नाश हो जाने पर क्रियाओं का फल क्षीण (नष्ट) हो जाता है। जैसे बेत का स्वभाव यह है कि उस पर फल नही आता है वैसे ही वासना रहित क्रिया भी फल नहीं लाती।[11] भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है– मनुष्य को कर्म में अधिकार है उनके फल में नहीं। प्रत्येक कर्म का फल अवश्य होता है जिसे मनुष्य को भोगना ही पड़ता है, उसे भोगने के लिए ही उसका जन्म और पुनर्जन्म होता है। वासना रहित कर्म फल नहीं देते हैं। जिस प्रकार गुणी बिना गुण के नहीं रह सकता, वैसे ही कोई भी मन बिना कर्म के नहीं रह सकता।[12]

योगवासिष्ठ में कहा गया है कि जैसे अग्नि की उष्णता, बर्फ से शीतलता भिन्न नहीं है, वैसे मन से कर्म भिन्न नहीं है।[13] कर्मफलों का भोग अज्ञानी जीव को ही करना पड़ता है। क्योंकि उसके कर्मों का सार वासना है। वासना रहित होकर किये गये कर्मों का फल नहीं होता इसलिए आत्मज्ञानी इनसे मुक्त रहता है, क्योंकि वह वासना रहित होता है। जिस प्रकार बन्ध्या (बांझ) स्त्री को सन्तान नहीं होती उसी प्रकार मन वासना रहित होने से बन्ध्या हो जाता है। फिर वह सन्तान रूपी फल नहीं दे सकता। अज्ञान के कारण ही संकल्प का उदय होता है तथा संकल्प से ही वासना का जन्म होता है। इसलिए मन का संकल्प होना ही कर्म बंधन का कारण है। ज्ञान प्राप्ति पर मन संकल्प रहित हो जाने से वह कर्म करता हुआ भी उससे मुक्त रहता है।

योगवासिष्ठ में इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि फल प्राप्ति की इच्छा से जो कार्य किया जाता है उसका फल अवश्य होता है तथा उसका भोग उसे भोगना ही पड़ता है। अहंभाव के कारण मनुष्य अपने को कर्ता मानता है। इसलिए वह कर्मफलों का भोक्ता भी हो जाता है। यही कर्म का नियम है।[14] जो शरीर की क्रियाओं का त्याग कर, मन से वासना का त्याग नहीं करते वे कर्मबंधन से मुक्त नहीं हो सकते। वासना रहित ज्ञानी ही उनसे मुक्त होता है। वे कर्म करते रहते हुए भी उनके फलों से मुक्त रहते हैं। इसी प्रकार गीता में वर्णन हुआ है कि जो बिना इच्छा के अपने आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा सन्तुष्ट रहता है जिसमें ईर्ष्या का सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा अतीत हो गया है, ऐसी सिद्धि और असिद्धि में सम रहने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बंधता।[15]

भगवान श्री कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय को समान समझकर युद्ध की चेष्टा कर इस प्रकार युद्ध करता हुआ तू पाप को नहीं प्राप्त करेगा।[16] इस अनासक्त कर्म कौशल को गीता में निष्काम कर्म कहा है। निष्काम कर्म की तुलना भुने हुए बीज से की गयी है क्योंकि भुनने के बाद बीज रहते हुए भी अंकुरित नहीं हो पाता। अर्थात् फल को प्राप्त नहीं होता, यही निष्काम कर्म है। निष्काम भाव से कर्म करने से ही कर्मबंधन शिथिल होता है। इसी विचार से निःस्वार्थ इच्छा रहित तटस्थ रूप से कर्म करने के अर्थ में निष्काम कर्म का प्रयोग मारकण्डेय पुराण में भी मिलता है।

विनोबा भावे जी के अनुसार "कर्मयोग के फल को छोड़ने से कर्मयोगी उल्टा अनन्त गुना फल प्राप्त करता है।"[17] साधक को अपने कर्तव्य कर्म सदैव करते ही रहना चाहिए, किन्तु सांसारिक पदार्थ में किन्चित मात्र भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। संसार के सभी भोग पदार्थ अनित्य हैं, नाशवान हैं, वे किसी के भी नहीं हैं। मनुष्य अज्ञानवश उनमें ममता कर बैठता है। वस्तुतः ये सब के सब पदार्थ सर्वव्यापी सर्वनियन्ता परमेश्वर के हैं।

गीता में कहा गया है "संसार रूपी समुद्र से अपने आपको पार पहुंचाने के लिए अर्थात् मानव के चरमोत्कर्ष लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निष्काम कर्मयोग में प्रवृत्त होना परम आवश्यक है, जिससे विषयों में अनासक्त होते हुए अधोगति को प्राप्त न हो पायें। क्योंकि यह जीवात्मा पूर्व जनित पाप और पुण्य के संस्कारों से आच्छादित होने के फलस्वरूप स्वयं मित्र और शत्रु दोनों है।"[19] अतः पूर्वजन्म संग्रहित पाप कर्मों से छुटकारा दिलाने के लिए निष्काम कर्मयोग के आरूढ़ होने का उपदेश (संदेश) दिया है। **डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार** कर्मयोग जीवन के लक्ष्य तक पहुंचाने की एक वैकल्पिक पद्धति है।[20]

योगवासिष्ठ में कहा गया है कि जो मनुष्य मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। जैसे नदियों से निकला जल सब ओर से होकर समुद्र में मिल जाता है, वैसे ही सभी प्रकार के भोगों से अपने मन को हटाकर स्थितप्रज्ञ करके जो मनुष्य कर्मयोग निष्काम भाव से करता है वही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थिति वाले महात्मा का मन हर्ष, शोक और ईर्ष्या के वशीभूत नहीं होता। वही असक्त है, जो मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों को और उनके फलों आदि का कर्म से, मन से भलीभांति त्याग कर देता है, वह असक्त कर्म कहलाता है।[21]

कर्मफल का सिद्धान्त –

मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही उसका फलभोग करता है। यह भी निश्चित है कि कर्म संस्कार विद्यमान रहते मनुष्य को किसी भी स्थिति में मुक्ति–मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए योगशास्त्र में कहा गया है कि क्लेश मूल अर्थात् संस्कार विद्यमान रहते मनुष्य को कैवल्य–मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु किसी भी योनि में जाकर जन्म, जाति, आयु और भोग्य प्राप्त करता है और कर्म संस्कारों के अनुसार ही जीव सुख दुःखादि क्लेश प्राप्त करता है।[22] संचित और प्रारब्ध कर्म तो हमारे अधीन नहीं होते क्योंकि वे पूर्व ही संचित हो चुके होते हैं। वे फल देकर ही शान्त होते हैं। जैसे कि कहा गया है –

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्त्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।[23]

कर्म संस्कार फल भोग दिये बिना कोटि कल्प बीत जाने पर भी नष्ट नहीं होता, किन्तु फल भोग देकर के ही क्षय (नाश) को प्राप्त होता है। वह शुभ या अशुभ जैसे भी कर्म करता है उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसी प्रकार **योगवासिष्ठ** में कर्मफल की अकाट्यता को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि "संसार में ऐसी कोई भी जगह– पहाड़, आकाश, समुद्र, स्वर्ग आदि नहीं है, जहां पर अपने किये हुए कर्मों का फल न मिलता हो। पूर्व जन्म में अथवा इस जन्म में जो भी कर्म किया गया है वह अवश्य ही (फल रूप में) प्रकट होता है वह पुरूष का किया हुआ यत्न है, वह फल लाये बिना कभी नहीं रहता।"[24] कर्मफल के अनेक उदाहरण भारतीय इतिहास में उपलब्ध हैं। कर्मफल के अनिश्चित होने की बात सोचकर ही मनुष्य कुमार्ग पर चलते हैं, कुकर्म करते हैं और दुर्दशा के जाल में फंसते हैं। भगवान ने संसार बनाया और साथ ही साथ कर्म प्रतिफल का सुनिश्चित संविधान रचा दिया। अपनी निज की लीलाओं में भी उसने लक्ष्य को प्रकट किया है। भगवान राम ने बलि को छिपकर तीर मारा, अगली बार कृष्ण बनकर जन्मे राम को उस बहेलिये के तीर का शिकार होना पड़ा जो पिछले जन्म में

बलि था। राम के पिता दशरथ ने श्रवण कुमार को तीर मारा, उसके पिता ने शाप दिया कि वधकर्ता को मेरी तरह ही पुत्र शोक में बिलख–बिलख कर मरना पड़ेगा और वैसा हुआ। राम अपने पिता की सहायता न कर सके और उन्हें कर्म का प्रतिफल भुगतना पड़ा। कर्मफल भुगतने की विवशता हर किसी के लिए आवश्यकता है। कर्मफल की सुनिश्चितता का तथ्य ऐसा है जिसे अकाट्य ही समझना आवश्यक है। इन कर्मों के भोगने में महाभारत में युक्ति दी गई है कि जिस प्रकार हजारों गायों के बीच बछड़ा अपनी माँ को ढूंढ लेता है उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म अपने कर्ता का अनुसरण प्राप्त करता है।[25] यह मानना उचित होगा कि कर्म के पंजे में आने के पश्चात् उससे बचने के कोई उपाय नहीं। अतः कर्म का फल भोगना ही पड़ता है।

योगदर्शन में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट युक्ति दी गई है कि पुण्य और अपुण्य हेतु होने के कारण उन कर्मों का फल सुखरूप और दुःखरूप ही होता है।[26]

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि जब कोई मनुष्य बुरे कार्य करता है तो बुरा बनता जाता है और जब अच्छे कार्य करने लगता है तो दिनों दिन सबल बन जाता है। कर्म का प्रभाव अपना जोर पकड़ता है, हमारे शरीर, मन द्वारा किया हुआ प्रत्येक कार्य हमारे पास फल के रूप में वापस आ जाता है।[27]

देवी भागवत में उल्लेख हुआ है कि जीव अपने कर्म से इन्द्र एवं हरि का भक्त बन सकता है, जन्म–मरण से रहित हो सकता है, अपने कर्म से सभी प्रकार की सिद्धियां तथा अमरत्व प्राप्त कर सकता है।[28] वह अपने कर्म से ही सालोक्य और मुक्तियां एवं देवता, मनुष्य, राजा, शिव, गणेज जी चाहे जो बन सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्म ऐसी वस्तु नहीं है जो बाहर से लाकर जीव पर थोप दी गयी हो। बल्कि कर्म स्वयं बनाया जाता है और इसको बनाने वाला जीव इसको निरन्तर स्वयं बनाता रहता है। इस प्रकार कर्मों का फल अनिवार्य रूप से भुगतना पड़ता है। इसका संविभाग नहीं हो सकता है अर्थात् जो कर्म करता है वही उनके फलों का भोगता है। प्रत्येक कर्म में जीव की इच्छा संकल्प एवं चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका है।

कर्मफल, कर्म का ही उत्तर रूप है और कर्म, कर्मफल का पूर्ण रूप है। कर्म करने पर उसका फल अवश्यमेव होगा, यह स्वयं सिद्ध तथ्य है। अतएव चिन्तन, वासना चेतना का कर्मफल अवश्यम्भावी है। कर्मफल का भोग करना ही पड़ता है। **महर्षि पतंजलि** ने इसी प्रकार कहा है– "साधारण मनुष्यों के कर्म संस्कार रूप से अन्तःकरण में इकट्ठा रहते हैं।"[29] जिस प्रकार मछली प्रवाह के विरूद्ध पीछे हो जाती है, उसी प्रकार पूर्वजन्म के कर्म कर्ता के ऊपर बलपूर्वक लाद दिये जाते हैं।[30] शरीर धारण पर जीव अपने शुभ कर्मों से सुख एवं अशुभ कर्मों से दुःख भोगता है।

डॉ0 राधाकृष्णन ने बताया है कि जीवन और आचरण में कोई भी सिद्धान्त इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि कर्म सिद्धान्त है। यह भविष्य के प्रति आशा और अतीत के प्रति विस्मृति पर बल देता है।[31] साधारणतया लोग कर्मफल भोग को समझने के लिए व्यक्ति के केवल वर्तमान को देखते हैं, भूत–भविष्य पर निगाह नहीं डालते। व्यक्ति का हर वर्तमान अतीत का फल होता है और वर्तमान का फल भविष्य होता है। पर वर्तमान के फल को वर्तमान में ही देखना चाहते हैं, ऐसा करना तो आज्ञान है, या अन्याय है। अज्ञान की दृष्टि से अन्याय के घेरे में रहकर न्याय को समझ पाना असंभव है। प्रकृति में हर कार्य अपने समय से होता है। वह किसी राजे महाराजे का शासन नहीं है। वहाँ किसी के मन की बात नहीं लागू होती। वहां हरेक कार्य अपने आप होता है। कर्म तो हमेशा होते रहते हैं। लेकिन किस प्रकार के कर्म किये जाएं इसका निर्धारण आवश्यक है। वैसे कर्मों की गति अति जटिल है।[32] इसे समझ पाना अत्यन्त कठिन है। करोड़ों कल्प बीत जाने पर भी कर्मफल भोगे बिना मनुष्य को कर्म से छुटकारा

नहीं मिल सकता। वह अच्छे, बुरे जैसे भी कर्म करता है उसका फल वैसे ही भोगना पड़ता है। संसार में किये हुए कर्म का कभी नाश नहीं होता।

अथर्ववेद में कर्मफल के विषय में कहा गया है कि ईश्वरीय दूत कभी भी नहीं सोते हैं। वे हमेशा सभी के पास खड़े रहते हैं। वे प्रत्येक व्यक्तियों के कर्मों को देखते हैं और तदनुसार उन्हें फल देते हैं।[33] मनुष्य अपने अच्छे तथा बुरे कर्मों का फल भोगता है। यम मनुष्यों के कर्मों की मात्रा को ठीक नापकर तदनुसार फल देता है। जो मनुष्य बुरे कर्म करता है उसे अपने कुकर्मों का दुष्परिणाम मिलता है। वह पापी होता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है। इतना ही नहीं अपितु अच्छे कर्मों का अच्छा फल दूसरों पर भी पड़ता है। कर्म में विश्वास रखने वाले एक प्राचीन मनीषी को कर्म पर इतना भरोसा था कि वह कहते थे कि "मेरे दाहिने हाथ में पुरूषार्थ है और बायें हाथ में सफलता रखी है।"[34] इसका मतलब यह है कि जहां कर्म है वहां गति है, जहां गति है वहां जीवन है। वहां दुःखों का भी अभाव है। इसका अभिप्राय यह है कि जहां कर्म है वहां सुख है, जहां अकर्मण्यता है वहां दुःख है। कर्म हमारे वर्तमान जीवन का तथा इससे पूर्व जन्मों के कार्यों का योग है।

आज का बोया बीज जैसे कल फल देता है, आज का जमाया दूध कल दही बनता है, आज का आरम्भ किया हुआ अध्ययन, व्यायाम, व्यवसाय तत्काल फल नहीं देता, उसकी प्रतिक्रिया में कुछ समय लग जाता है। इसी विलम्ब में मनुष्य की दूरदर्शिता और बुद्धिमता की परीक्षा है। यदि तत्काल फल मिल जाया करे तो किसी के भले–बुरे की निर्णय की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यह संसार कर्मफल व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। पेण्डुलम एक ओर जाता है तो उसे लौटकर अपनी जगह आना होता है। शब्द भेदी बाण की तरह भले बुरे विचार अन्तरिक्ष में चक्कर काटकर उसी मस्तिष्क पर आ विराजते हैं जहां से उन्हें छोड़ा गया था। कर्म की सुनिश्चितता का तथ्य ऐसा है जिसे अकाट्य ही समझना आवश्यक है।

यह सृष्टि कर्मफल के आधार पर चल रही है। ईश्वर ने संसार को बनाया और उसे नियमबद्ध, क्रमबद्ध, सुसंचालित रखने के लिए कर्मफल का विधान रचा। कर्म करने की स्वतंत्रता तो हर किसी को दी, किन्तु साथ ही साथ यह विधान भी बना दिया कि हर किसी को अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा। इस नियम से ईश्वर ने अपने को भी मुक्त नहीं रखा, वरन् वह भी उसी कार्य मर्यादा में बंधा गया। राजा दशरथ द्वारा श्रवण कुमार की धोखे से हत्या परिणाम स्वरूप पुत्र वियोग में प्राणान्त। दशरथ की मृत्यु इसी प्रकार बिलख–बिलख कर हुई। राम अपने पिता को भी उस कर्मफल से छुड़ाने में समर्थ नहीं हुए। यहां कर्म की प्रबलता है। ईश्वर का किसी के सुख–दुःख में हस्तक्षेप नहीं और भाग्य की अपनी अलग से कोई सत्ता नहीं। वह कर्म की परिणति मात्र है।

कर्मफल की अकाट्यता

योगवासिष्ठ में उपशम प्रकरण सर्ग 70 में उल्लेख हुआ है कि मनुष्य को जो भी क्लेश मिलते हैं, वह उसके पूर्व जन्मों के अहंता, ममता और आसक्ति पूर्वक किये गये कर्मों का फल है।[36] वासना से युक्त होने पर मनुष्य सुख और दुःख का फल प्राप्त करता है। सभी कर्मों का फल इसीलिए भुगतना पड़ता है कि उसके कर्मों का सार वासना ही है। योगवासिष्ठ में कर्मफल की अकाट्यता को स्वीकारते हुए कहा गया है कि प्रत्येक जीव अपने किये गये कर्मों का बुरा या भला फल अवश्य ही पाता है। यह सृष्टि का अटल नियम है। किये हुए कर्मों का फल पाने के लिए ही जीव को एक जन्म से दूसरे जन्म में और एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में जाना पड़ता है। यद्यपि प्रत्येक जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है तो भी किये हुए कर्मों का फल भोगने में वह परतन्त्र सा ही है। उसे अवश्य ही अपने कर्मों का फल भोगना पड़ेगा।[37]

कर्मफल की व्यवस्था में वाह्य नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती, यह तो प्रकृति की स्वचालित प्रक्रिया है। वस्तुतः कर्मफल क्रिया की प्रतिक्रिया है। जैसे परिश्रम करने से पसीना निकलता है, उसी प्रकार अच्छे व बुरे कर्म से नियम का ज्ञान होता है एवं कर्म से उत्पन्न शक्ति का बोध होता है। कर्म शक्ति से ही कर्मफल उत्पन्न होते हैं।

इन सभी अनुभवों के आधार पर वैदिक काल से लेकर आज तक अत्यन्त विकासशील समय में कर्म सिद्धान्त पर विचार होता चला आ रहा है। रामायण काल एवं महाभारत काल में प्रमाण मिलते हैं कि मनीषियों ने कर्म सिद्धान्त पर गहन विवेचन किया है। रामायण काल में कर्म की प्रधानता का सिद्धान्त समाज में पूरी तरह मान्यता प्राप्त कर चुका था। गोस्वामी तुलसीदास महाराज ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ मानस में कर्म की प्रधानता को अनेक स्थानों पर उद्घृत करने वाली चौपाईयां लिखी हैं। जो कि मानव समाज के लिए कर्मभूमि ही सबकुछ है, इस सिद्धान्त का ज्ञान कराती है जैसे –

“कर्म प्रधान विश्व करि राखा
जो जस करहि सो तस फल चाखा।”
“कोहु–कोहू कर नहिं सुख दुखदाता
निज कृत कर्म भोगा सब भ्राता।”

अर्थात् कोई किसी को सुख या दुःख देने में समर्थ नहीं है। वास्तव में प्राणी अपने कर्म से ही सुख और दुख को प्राप्त करता हे। यही चिन्तन भारतीय दर्शन का कर्म सिद्धान्त है। कर्म बन्धन का कारण माना गया है। जीव अपने कर्मों तथा संस्कारों के कारण शरीर धारण करता है तथा कामनाओं का शिकार होता है। यहां शरीर का अर्थ स्थूल इन्द्रिय मन और प्राण सभी से है। किसी व्यक्ति का विशेष परिवार या वंश में जन्म लेना उसके कर्म के संस्कार पर निर्भर करता है। कर्म जीव के साथ रहता है, कर्म के कारण ही जीव को बार–बार जन्म लेना पड़ता है। कर्म बंधन का मुख्य कारण है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चारों कषायों से जीव का अनादि सम्पर्क है। वह भी कर्म के कारण ही है।[38] जिस प्रकार अंकुर से बीज और बीज से अंकुर होता है उसी प्रकार कर्म से सृष्टि और सृष्टि के लिए कर्म है। महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र में इसी प्रकार कहा है कि हमारे अन्दर कामनाओं का आदि नहीं। ये कर्म के विपाक अनादि काल से हैं। उनका प्रारम्भ नहीं माना जा सकता है। ये कर्म ही कामनायें जन्म–जन्मान्तर के साथ रहती हैं। जीवात्मा की इच्छा यह रहती है कि वह सदा रहे, वह न रहे ऐसी इच्छा उसकी कभी भी नहीं रहती है।[39] वह नित्य रहना चाहता है। उसकी यह इच्छा सिद्ध करती है कि वह नाना जन्मों में कर्म करता रहे और उनका फल भोगता रहता है।

निष्काम कर्म की महत्ता –

निष्काम कर्मयोग के पालन करने से परमसिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।[40] निष्काम कर्म वह है जिसमें कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है, यह तृष्णा रहित कर्म है, अर्थात् मन को इन्द्रियों के विषय से हटाकर कर्म करना निष्काम कर्म है और वह कर्म जो व्यक्ति को परमात्मा से जोड़े वही कर्मयोग है। **योगवासिष्ठ** में वर्णित हुआ है कि परमात्मा की प्राप्ति करने के लिए आसक्ति का त्यागकर कर्तव्य कर्मों को करो, क्योंकि आसक्ति रहित कर्म करने वाला मनुष्य कर्मों में नहीं बंधता और पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता अर्थात् वह परम पद को प्राप्त हो जाता है।[41] जैसा कि योगवासिष्ठ में बताया गया है कि कर्मों को करना पर कर्मों के फल के प्रति आसक्ति न हो, ऐसा मनुष्य कर्म करते हुए संसार रूपी बंधन में नहीं पड़ता है और फिर वह जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। क्योंकि विषय सुख अत्यन्त नीरस हो जाने पर उस परम ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार **डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी** कहते हैं कि निष्काम कर्मयोग से मनुष्य के बंधन कटते हैं और बंधनों के कटने से अन्तःकरण निर्मल एवं पवित्र होता है।[42] कर्मयोग से चित्त शुद्धि होती है और ऐसे शुद्ध हुए अन्तःकरण के द्वारा निष्काम

कर्म के आचरण से मनुष्य का अन्तःकरण नितान्त निर्मल हो जाता है और साक्षात् भगवत प्राप्ति हेतु अनुभूत ज्ञान का पवित्र स्थल बन जाता है। ऐसे कर्म मनुष्य को आसक्त नहीं करते हैं और न वह उनमें संलिप्त ही होता है। इस तरह वह कर्म करते हुए उनमें बंधता नहीं है और परम पद को प्राप्त करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में निष्काम भाव को इस प्रकार वर्णित किया है – जिनको कर्म, वचन और मन से मेरी ही गति है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।[43] जैसा कि गीता में कहा गया है कि मुझमें चित्त लगाने वाले भक्तों को मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।[44] इस प्रकार चित्त शुद्धि हो जाने पर और अन्तःकरण की निर्मलता, निष्काम कर्मयोग से प्राप्त होती है। जिससे मनुष्य इस संसार रूपी सागर से पार हो जाता है और इसी निष्काम कर्म के द्वारा मनुष्य को उस परम सत्ता परमेश्वर का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है।

योगवासिष्ठ में उल्लेख हुआ है कि जो मनुष्य केवल आत्मा में ही रत, आत्मा में तृप्त और आत्मा में ही सन्तुष्ट हो जाता है, फिर उसके लिए और कुछ भी कार्य शेष नहीं रह जाता। तब इस संसार में कोई काम करने या न करने से भी उसका कोई लाभ नहीं होता।[45] कहने का तात्पर्य यह है कि जिसने परमात्मा को प्राप्त कर लिया है उसको और कुछ पाने इच्छा नहीं होती, न ही वह किसी लाभ की अभिलाषा रखता है। निष्काम कर्म करने वाला कोई कार्य करे या न करे, उसे किसी फल की इच्छा नहीं होती है। वह अनासक्त भाव से सभी कर्म को करता है और भगवत प्राप्ति कर लेता है। गीता कहती है कि निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले, पुरूषों का पाप नष्ट हो जाता है और वह राग द्वेष जनित द्वन्द्व रूप मोह से मुक्त होकर दृढ़ निश्चयी भक्त मुझे ही प्राप्त हो जाता है।[46] इसलिए कहा गया है कि निष्काम कर्म और आसक्ति छोड़कर कार्य करने वाले मनुष्य को परम गति प्राप्त होती है।[47] निष्काम कर्मयोग ही ऐसा माध्यम है जिससे परमात्म तत्व को प्राप्त किया जा सकता है और मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। वेद भी कहते हैं– फल का परित्याग मनुष्य की अन्तःशुद्धि करता है और भगवतप्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। आसक्ति रहित कर्म के द्वारा परम आनन्द सहज प्राप्त हो सकता है। सब कुछ भगवान को समझकर सिद्धि–असिद्धि से समत्व भाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग करके जो निष्काम सेवा करता है और ऐसा करने में अतिशय प्रसन्नता एवं परम शान्ति का अनुभव करता है, इस प्रकार के साधन से परमात्मा की प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है।

जयदयाल गोयन्दका ने कहा है निष्काम कर्म से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।[48] इस प्रकार की सेवा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति के अनेकों उदाहरण शास्त्रों में मिलते हैं। कुछ शताब्दी पूर्व दक्षिण में एकनाथ जी नाम के प्रसिद्ध महात्मा थे। वह गंगोत्री की यात्रा करके वहां का जल काँवर में भरकर रामेश्वर की ओर जा रहे थे। रास्ते में बरार प्रान्त में उन्हें एक ऐसा मैदान मिला, जहां जल का बड़ा अभाव था और एक गधा प्यास के मारे तड़पता हुआ जमीन पर पड़ा था। उसकी प्यास बुझाने के लिए एकनाथ जी महाराज ने उस जल को, जिसे वे इतनी दूर से रामेश्वर के शिवलिंग पर चढ़ाने के लिए लाये थे, उस गधे को भगवान शंकर का रूप समझकर पिला दिया। इस प्रकार प्रत्येक भूत प्राणी में परमात्मा की भावना करके उसकी निःस्वार्थ भाव से सेवा करने से परमात्मा की प्राप्ति सहज में ही हो जाती है।

योगवासिष्ठ में इस प्रकार कहा है कि जिसने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है, जिनकी कामनाएं पूर्ण रूप में नष्ट हो गयी हैं। वे सुख–दुख नामक द्वन्द्वों से मुक्त पुरूष उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।[49] निष्काम कर्मयोग की महिमा का उल्लेख करते हुए गीता में कहा गया है–

"योगयुक्तो मुनिर्ब्रहम नचिरेणाधि गच्छति"[50]

अर्थात् निष्काम कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। निष्काम कर्म के ही द्वारा कहा जा सकता है कि निष्काम कर्म के परिणाम से चित्त शुद्धि होती है एवं आत्मानुभूति होती है। जिससे ब्राह्मी स्थिति की प्राप्ति होती है। निष्काम कर्म करते हुए जब आगे बढ़ते हैं तो हमारे कुसंस्कार ऐसे झड़ते हैं जैसे वृक्ष से पत्ते। पुराने पीले पड़े पत्ते इस प्रकार झड़ते चले जाते हैं कि पता भी नहीं चलता। अतः निष्काम कर्म बिना आसक्ति के किया गया कर्म ही सबसे बड़ा तप है और सबसे बड़ा कर्मयोग है। जो कर्मों के बंधन में नहीं बंधने देता है। वास्तव में ही सभी साधकों के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र है।

निष्काम कर्म का वर्णन गीता के 2/39वें श्लोक से आरम्भ हो जाता है। सम्पूर्ण गीता में अहंता, ममता और आसक्ति का विरोध किया गया है। कहा गया है कि तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है, फल में नहीं। इसलिए तुम फल की वासना वाले मत बनो और कार्यों को छोड़ देने का भी विचार मत करो।[51] जैसा कि कहा गया है कि कर्म करना व्यक्ति का अधिकार और कर्तव्य दोनों है। उसे कर्म करना ही चाहिए लेकिन उसे आदेश दिया गया है कि कर्म की वासना से मुक्त रहो। इसका कारण यह है कि फलासक्ति से कर्मबंधन दृढ़ होता है इसलिए गीता में फलेच्छा से रहित होकर कर्म करने की शिक्षा दी गयी है। क्योंकि फल की इच्छा रखने वाले कृपा, दीन दया के पात्र होते हैं। इसलिए निष्काम भाव से कर्म करना आवश्यक है। फल की इच्छा नहीं होनी चाहिए। उस परमात्मा को सम्पूर्ण कर्मफल को समर्पित करके उसके स्वरूप में अपनी आत्म स्थिति करनी चाहिए, जिससे मनुष्य इस संसार के भव बंधन को पार कर लेता है।

निश्कर्श

योगवासिष्ठ में इसी प्रकार का उल्लेख हुआ है कि संसार सागर से उद्धार पाने के लिए तो एकमात्र अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिति ही कारण है। जिसका मन कहीं भी आसक्त नहीं वह भवसागर से पार हो जाता है। वह मनुष्य नित्य शुभ कर्मों का अनुष्ठान और अशुभ कर्मों को त्याग करता हुआ फिर संसार बंधन में नहीं आता।[52] इस संसार के दुखियों की कर्मयोग ही उत्तम औषधि है। मनुष्य संसार में रहते हुए भी निष्काम भाव से या भगवत अर्पित बुद्धि से अपने कर्तव्य कर्मों को करते हुए भी इस निष्काम कर्मयोग के द्वारा परमात्म तत्व को प्राप्त कर सकता है।[53] मनुष्य संसार में नहीं बंधता है और निष्काम कर्मयोग के द्वारा वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। जिसकी बुद्धि विषयों के प्रति असक्त है और जिसने अपने मन को विषयों में खुला रखा है, वह मनुष्य संसार सागर में डूबता ही है। जिसकी बुद्धि ने रसानुभव किया है वह बुद्धि दुःख पर दुःख देने वाली होती है। जैसे– शहद के घड़े में घुसी हुई मक्खी की तरह, उसे न तो वहाँ से हटाया जा सकता है और न मारा ही जा सकता है। मोक्ष की सिद्धि के लिए अपने चित्त की वृत्ति स्वयं ही परमात्म साक्षात्कार की ओर प्रवृत्त हो जाती है। जब परमात्म साक्षात्कार होने पर उस तत्व की उपलब्धि हो जाती है और निर्मलता प्राप्त हुआ चित्त निर्द्वन्द्व, अनासक्त एवं निर्विकार ब्रह्म ही हो जाता है। जो मनुष्य अपने सम्पूर्ण कर्मों ओर उसके फलों में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से मुक्त हो जाता है और परमात्मा में नित्य तृप्त होता वह कर्मों को भलीभांति करते हुए भी वास्तव में इस संसार के भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. पण्ड्या, डॉ0 प्रणव – अखण्ड ज्योति, वर्ष 2006, अंक–12, पृ0 31.
2. श्रीमद्भगवद्गीता 5/10.
3. आचार्य श्रीराम शर्मा – ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, पृ0 18.
4. आचार्य श्रीराम शर्मा – योगवासिष्ठ, भाग–1, पृ0 6.

5. दास, स्वामी रामसुख – साधक संजीवनी, 3/3.
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2/47.
7. 'कल्याण' संक्षिप्त योगवासिष्ठ अंक (पैंतीसवे वर्ष का विशेषांक), पृ0 352.
8. श्रीमद्भगवद्गीता 5/12.
9. आचार्य श्रीराम शर्मा – योगवासिष्ठ, भाग–1, पृ0 6–7.
10. योगवासिष्ठ 6/1 /87/20.
11. योगवासिष्ठ 6/1 /87/21.
12. योगवासिष्ठ 3/96/6.
13. योगवासिष्ठ 3/96/7.
14. योगवासिष्ठ 4/38/3.
15. श्रीमद्भगवद्गीता 12/22.
16. श्रीमद्भगवद्गीता 2/38.
17. विनोबा भावे, गीता प्रवचन, पृ0 75.
18. श्रीमद्भगवद्गीता 6/5.
19. डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन – श्रीमद्भगवद्गीता, पृ0 75.
20. 'कल्याण' संक्षिप्त योगवासिष्ठ अंक (35वें वर्ष का विशेषांक), पृ0 272.
21. पातंजल योगसूत्र 2/13.
22. ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड, 44.
23. योगवासिष्ठ 3/95/33–34.
24. महाभारत शान्तिपर्व 181.16.
25. पातंजल योगसूत्र 2/14.
26. स्वामी विवेकानन्द – 'कर्मयोग', पृ0 67.
27. देवी भागवत – 927.18.20.
28. पातंजल योगसूत्र 4/8.
29. महाभारत शान्तिपर्व 291.12.
30. चीपसवेवचील वि जीम न्चंदपींकंए च्ण 25ण
31. 'गहना कर्मणोगति' गीता 4/11.
32. अथर्ववेद 5.6.3.
33. अथर्ववेद 7–52.8
34. दशोरा, नन्दलाल – योगवाशिष्ठ महारामायण, पृ0 257.
35. आत्रेय, डॉ0 भीखन लाल – योगवसिष्ठ और उसके सिद्धान्त, पृ0 462.
36. मिश्र, सुनील चन्द्र; मिश्रा, आभा – भारतीय दर्शन की अवधारणाएं, पृ0 61
37. पातंजल योगसूत्र 4/10.
38. स्वामी रामसुखदास, साधक संजीवनी, पृ0 187.
39. 'कल्याण' संक्षिप्त योग वासिष्ठ अंक (पैंतीसवे वर्ष का विशेषांक), पृ0 352–353.
40. पण्ड्या, डॉ0 प्रणव – अखण्ड ज्योति, वर्ष 2006, अंक–12, पृ0 31.
41. वचन कर्म मनमोरि गति भजनु करहि निःकाम।
42. रामचरित मानस, अरण्य काण्ड 16.
43. श्रीमद्भगवद्गीता 12/7.
44. आचार्य श्रीराम शर्मा – योगवासिष्ठ भाग–1, पृ0 8.
45. श्रीमद्भगवद्गीता 8/28.
46. श्रीमद्भगवद्गीता 3/19.
47. गोयन्दका, जयदयाल – तत्वचिन्तामणि (संयुक्त भाग), पृ0 440–441.
48. 'कल्याण' संक्षिप्त योगवासिष्ठ अंक (35वें वर्ष का विशेषांक), पृ0 354.
49. श्रीमद्भगवद्गीता 5/6.
50. गीता 2/47
51. 'कल्याण' संक्षिप्त योग वासिष्ठ अंक (35वें वर्ष का विशेषांक), पृ0 573.

ंण आचार्य श्रीराम शर्मा – योगी कर्म का भाष्यकार बना, अखण्ड ज्योति, वर्ष–1954, अंक–3, पृ0 42.